THE TIMES OF INDIA

Date: 16-11-16

What CPEC means for South Asia

It fundamentally alters Pakistan's alignment, sundering its link to the subcontinent

Why is the China-Pakistan Economic Corridor such a challenge to India? Conventional wisdom has it that India is worried about CPEC at its two ends: Gwadar, where the Chinese are building a maritime presence, and Pakistan-occupied segments of the former kingdom of Jammu & Kashmir, where Pakistani and Chinese territorial and military frontiers are merging.

However, there is a deeper issue, one that has hitherto underpinned India's long-term Pakistan strategy. The very fundamentals of that strategy are now under question. Indeed, CPEC is rewriting the economic geography and regional integrity of the subcontinent in a manner that will require more than a tactical, episodic response.Historically and across the world, trade routes have tended to flow from north to south. There have been exceptions, such as when Britain/northern Europe became an economic power and a significant consumer of commodities, and trade routes moved south to north. Yet, for the most part that trajectory has been maintained.

This is no coincidence. Most of the world's people live in the northern hemisphere and trade has tended to seek a route to the sea (to the south) to explore new markets. So it has been in the Indian subcontinent too, for centuries and millennia. Trade routes came down from Central Asia to modern Pakistan, into contemporary northern India, before finding their way to peninsular India.Partition interrupted this perennial free trade zone (before we knew what the expression meant). Economically this hurt India, especially north India, and cut it off from markets such as Afghanistan. It hurt Pakistan even more and left it trapped and locked out of its natural trading hinterland. More than the political act of Partition – a fact of history nobody seriously wants to change – it was the trade walls that came up on the Radcliffe Line that negatively affected the destiny of the subcontinent.As India opened up its economy in 1991, this absence of sufficient economic osmosis with its neighbours emerged as a paradox. Every prime minister since then, irrespective of party and whatever his individual instincts and political beliefs, came to accept that as India's economy grew, Pakistan would be compelled by business and commercial logic to engage with India.

This could be a product of enlightenment or self-interest, internal pressure or global currents: but it would happen. It would make Pakistan, depending on where it was placed, India's Canada or India's Mexico. The persuasiveness of the north-south trade route could not be rejected forever.CPEC alters that supposition. It replaces Pakistan's dependence on a north-south trade corridor with its bet on an east-west corridor, from Kashgar (Xinjiang province) to Gwadar. This trade route is fairly unprecedented and is an expression of a new economic and strategic geography that China wants to define.Admittedly CPEC is not quite the "corridor of opportunities" that its advocates contend. Many of its projects are financially unviable. The power plants it is building will require tariffs that are unsustainable for most Pakistanis. CPEC follows a familiar pattern of

Chinese investments in South Asian countries – including for instance Hambantota port, the white elephant Sri Lanka has been saddled with.

In this model much of Chinese "investment" is actually a loan that the host nation has to repay. The bulk of Chinese money goes not to locals but is transferred from a state-owned Chinese bank or credit institution to a state-run or state-associated Chinese infrastructure company that executes the project using Chinese workers. Project costs are gold plated to account for both bribes for local elites (generals in Rawalpindi or politicians in Punjab and Balochistan) as well as to ensure windfall gains for the Chinese.By all accounts, CPEC is going down this path as well. Having said that, its strategic importance for China is greater than usual. This is because of the access it allows western China to the Indian Ocean, as an alternative to the Straits of Malacca. It also gives China a presence and for all purposes a colony that will allow it room for immediate military and political influence in India's neighbourhood and in West Asia.

Whether CPEC's power plants eventually light up homes in rural Punjab or not, the fact is Pakistan's political and military elite has willingly signed on to this Chinese strategic blueprint. As in the case of another superpower in the past, it has happily sacrificed its country's realisable, long-term interests for personal benefit and in the service of an external benefactor.By embracing the east-west corridor (CPEC) Pakistan is not just abandoning its obvious north-south trade alignment but in effect turning its back on the subcontinent and on South Asia. It sees itself as culturally in West Asia and strategically as located within the Chinese politico-economic zone. This means that irrespective of how quickly or impressively India's economy may expand in the coming decades, Pakistan is not interested in a linkage let alone integration. New Delhi's assumption that this was a long-term inevitability no longer holds.How does India respond? It can wage a political and diplomatic battle to make CPEC un-implementable. This is possible but not probable.A harder school in the Indian establishment believes that if the subcontinent is no more the unit of reckoning for Pakistan, then India's interest in recognising and preserving shared tangible legacies, including natural and water resources, should correspondingly decline. Expect more on that in the coming days.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 16-11-16

मुद्रा आपूर्ति को झटका अर्थव्यवस्था को धक्का

मुद्रा अर्थव्यवस्था के परिचालन का काम करती है। मुद्रा आपूर्ति को किसी भी तरह का झटका अर्थव्यवस्था को मंदी की ओर ले जा सकता है। विस्तार से बता रहे हैं अजय शाह

देश के अनौपचारिक और औपचारिक क्षेत्रों में बहुत बड़े पैमाने पर लेनदेन के लिए नकदी का इस्तेमाल किया जाता है। सरकार ने 500 और 1,000 रुपये के नोट का चलन बंद करने की घोषणा की है और यह मुद्रा आपूर्ति को बहुत बड़ा झटका है। इसका अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक असर होगा। ऐसे में यह आवश्यक है कि मौद्रिक हालात को तेजी से स्थिर किया जाय। भारत का बहुत छोटा हिस्सा ऐसा है जहां अधिकांश काम बिना नकदी के किए जा सकते हैं। देश के लोग प्राय: नकद राशि का ही इस्तेमाल करते हैं। इसमें औपचारिक क्षेत्र की कुछ गतिविधियां एवं अनौपचारिक क्षेत्र के सभी लेनदेन शामिल हैं। वित्तीय क्षेत्र सुधारों ने बैंकिंग और भुगतान के क्षेत्र में कोई खास प्रगति नहीं की है। इसके परिणामस्वरूप लेनदेन में रुपये का दबदबा है। देश के कुल लेनदेन में इलेक्ट्रॉनिक लेनदेन की हिस्सेदारी दुनिया में सबसे कम है। जीडीपी में नकदी का योगदान दुनिया में सबसे अधिक है।

मुद्रा आपूर्ति वह नकदी है जिसका इस्तेमाल भुगतान करने के लिए किया जाता है। सरकार ने 500 और 1,000 रुपये के जिन लोगों को चलन से बाहर किया है, देश की कुल नकदी में उनकी हिस्सेदारी 80 फीसदी से अधिक थी। इस प्रकार 8 नवंबर को देश की मुद्रा आपूर्ति व्यवस्था को जबरदस्त झटका लगा। अमेरिका में 20वीं सदी में हम इस बात का उदाहरण देख चुके हैं कि कैसे खराब मौद्रिक नीतियों ने अर्थव्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित किया था। उस वक्त अमेरिकी केंद्रीय बैंक फेडरल रिजर्व की गलतियों के चलते वर्ष 1929 से 1933 के बीच देश की मौद्रिक आपूर्ति में 30 फीसदी की गिरावट दर्ज की गई थी। इसके चलते वैश्विक मंदी की शुरुआत हुई। इस पैमाने से देखा जाय तो हमारी मुद्रा आपूर्ति को लगा यह झटका अर्थव्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित कर सकता है।आखिर मुद्रा आपूर्ति को लगने वाला झटका किस प्रकार का असर डालता है? मुद्रा बाजार अर्थव्यवस्था के लिए स्नेहक का काम करती है। यह भुगतान का जरिया है। अगर हमारे पास पैसा नहीं होगा तो हम अदलाबदली से काम चलाएंगे। लेकिन यह आसान काम नहीं है। किस चीज के बदले क्या बदला जाएगा यह तय करना आसान नहीं है। सामान्य दिनों में हम कई बार पैसे पर ध्यान नहीं देते क्योंकि काम चलता रहता है। लेकिन जब मुद्रा पर प्रभाव पड़ता है तो बाजार अर्थव्यवस्था भी प्रभावित होती है। चूंकि देश में नकदी लेनदेन ज्यादा होते हैं इसलिए नकदी में 86 फीसदी की गिरावट ने लोगों की लेनदेन की क्षमता को बुरी तरह प्रभावित किया है। मुंबई में कई लोग टैक्सी बुक करना चाहते हैं और टैक्सी वाले भी ग्राहक तलाश कर रहे हैं लेकिन नकदी की कमी दोनों की राह रोक रही है। इसका असर टैक्सी चालकों की आय पर पड़ रहा है और ग्राहकों के आवागमन के अवरुद्ध होने के चलते उत्पादकता प्रभावित हो रही है।कई अन्य छोटी मोटी फर्म की बात करें तो उनकी आय को बहुत नुकसान हुआ है। कुछ फर्म तो पूंजी और ऋण के दम पर निभा ले जाएंगी लेकिन कई छोटी फर्म ऐसी भी हैं जो नकद लेनदेन पर ही चलती हैं। उनमें ऐसी शेयर पूंजी ही नहीं है कि वे इस झटके से निपट सकें। विमुद्रीकरण से प्रभावित तमाम लोग ऐसे भी हैं जिनकी पहुंच औपचारिक वित्त व्यवस्था तक नहीं है या जो आसानी से ऋण नहीं पा सकते। ऐसे वक्त में कर्ज देने वाले भी इस बात को लेकर चिंतित हैं कि वे जिसे पैसा दे रहे हैं वह फर्म पर्याप्त मजबूत है या नहीं। अगर कोई फर्म नाकाम साबित होती है तो इसका असर होना तय है। जबकि जो फर्म नाकाम नहीं होंगी वे भी कठिन समय में बचाव के लिए अपने आपको सीमित रखकर चलेंगी। इसका असर मांग पर होगा। वस्तुओं, सेवाओं और श्रम की खरीद प्रभावित होगी।

यह झटका पूरी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करेगा। सभी फर्मों को खरीद की दिक्कत से जूझना पड़ रहा है। संगठित क्षेत्र भी इससे बचा नहीं है। नतीजा दोपहिया वाहनों की बिक्री में गिरावट आना तय है। इससे आगे मांग पर और बुरा असर होगा। देश के दूरदराज इलाकों में हालात का और बुरा होना तय है। मैं तो अपने डेबिट कार्ड की मदद से खाना और ई-वॉलेट की मदद से कैब बुक करने में सक्षम हूं लेकिन सामान्य रेस्तरां और टैक्सी चालकों की हालत खस्ता है क्योंकि वे ई-भुगतान नहीं लेते। बीमारू कहे जाने वाले राज्यों में इस आर्थिक झटके का प्रभाव कहीं अधिक व्यापक होगा। धीरे-धीरे यह पूरे देश में फैलेगा। प्रश्न यह है कि क्या यह झटका अस्थायी है? क्या अर्थव्यवस्था जल्दी सामान्य हो जाएगी? सभी कंपनियां ऐसे झटकों में शेयर पूंजी और ऋण की मदद से निजात पाती हैं। जब समस्या लंबे समय तक बरकरार रहे तो ऐसा करना मुनासिब नहीं रह जाता। उस स्थिति में फर्म नाकाम होनी शुरू हो जाती हैं। इससे संगठनात्मक पूंजी पर बुरा असर होता है। एक बार फर्म अगर नाकाम हो गई तो इसे पलटा नहीं जा सकता। बाद में अगर अर्थव्यवस्था में पूंजी की बौछार की जाती है तो भी नाकाम हो चुकी फर्में दोबारा पटरी पर नहीं आएंगी। ऐसे में कहा जा सकता है कि अगर बड़े पैमाने पर कंपनियां नाकाम हुईं तो अर्थव्यवस्था को लंबी अवधि का और गहरा झटका लगेगा।हर बीतते दिन के साथ अर्थव्यवस्था की उत्पादक शक्ति पर असर होगा। ऐसे में हालात सामान्य बनाने और कंपनियों को बरबादी से बचाए रखने की जद्दोजहद शुरू हो जाएगी। जो लोग वास्तविक अर्थव्यवस्था को लेकर चिंतित रहते हैं वे भी मुद्रा की भूमिका और वित्त को अक्सर कम आंकते हैं। ऊपर दी गई दलीलें बताती हैं कि कैसे मुद्रा एक आड़ का काम करती है और उसके हटते ही वास्तविक उत्पादन बुरी तरह प्रभावित होता है। ऐसे में यह अनिवार्य है कि जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी आर्थिक परिस्थितियों को सामान्य बनाया जाय।

लेखक नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनैंस ऐंड पॉलिसी, नई दिल्ली में प्रोफेसर हैं। लेख में प्रस्तुत विचार निजी हैं।

Date: 16-11-16

एक अकेला फैसला पर्याप्त नहीं

कुछ दिन पहले कारोबारी जगत से जुड़े मेरे एक **परिचित** ने मुझसे पूछा कि क्या बड़े नोटों को चलन से बाहर करने की तैयारी की जा रही है? मैंने उससे कहा कि वह ऐसा क्यों सोचता है। इस पर उसका कहना था कि बाजार में ऐसी चर्चा है। मैंने उसे सलाह दी कि हाल-फिलहाल ऐसा होने की संभावना बेहद कम है और वह आराम से अपनी पहले से प्लान की गई यात्रा पर जा सकता है, किंतु जब आठ नवंबर की शाम आठ बजे प्रधानमंत्री द्वारा बड़े नोट बंद करने की **अप्रत्याशित** घोषणा की गई तो मुझे विख्यात अर्थशास्त्री और नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. पॉल सेमुअलसन द्वारा कही गई एक बात याद आ गई। आर्थिक पूर्वानुमानों के संदर्भ में एक वार्ता के दौरान जब उनसे पूछा गया कि क्या उन्हें महामंदी का कुछ पूर्वाभास था तो उन्होंने जवाब **दिया**- मैं क्या प्रतिष्ठित हार्वर्ड इकोनॉमिक्स के एक भी **फैकल्टी** को इसका अंदाजा नहीं था। सिर्फ उस संस्थान के चौकीदार को इसका **पूर्वाभास** था। सेमुअलसन ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा कि दरअसल वह चौकीदार उन सब फैकल्टी मेंबर्स से शुक्रवार को उनके सैलरी चेक **कलेक्ट** करता था ताकि उनके वीकेंड के खर्चे के लिए उन्हें भुनाया जा सके। एक बार उसने सभी सदस्यों से कहा कि वे अपने चेक के जरिये ज्यादा रकम लें, क्योंकि उसे नहीं लगता कि आगामी सोमवार को **बैंक** खुलेंगे, किंतु किसी ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया और नतीजा यह हुआ **कि** अगले हफ्ते सभी फैकल्टी मेंबर्स को चौकीदार से कुछ रकम उधार लेनी पड़ी।उक्त प्रसंग के उल्लेख का आशय यह है कि गली-बाजार में चलती चर्चाएं कई बार सच के ज्यादा करीब होती हैं। मैं पिछले कई दिनों से 500/1000 के नोटों का चलन बंद होने और बाजार में नए 2000 के नोट आने के बारे में सुन रहा था, लेकिन मैंने अपनी **अक्लमंदी** के मद में इस पर ध्यान नहीं दिया। बाजार में चल रही कुल धनराशि में से 86.4 फीसदी राशि 500 और 1000 के नोटों के रूप में है। इसी तरह यदि कुल नोटों की संख्या के हिसाब से देखें तो इनमें 500 और 1000 के **नोटों** की हिस्सेदारी क्रमश: 17.4 और 7 फीसदी ठहरती है। जाहिर है कि यह बड़ा आंकड़ा है और इसके अचानक चलन से बाहर होने से **अर्थव्यवस्था** में उथल-पुथल तो मचनी ही थी और वह दिख भी रही है। नोेट बंदी की घोषणा की अगली सुबह जब मैंने और मेरी पत्नी ने अपने-अपने बटुओं को खंगाला तो पाया कि हमारे पास फिलहाल खर्च लायक सिर्फ 600 रुपये हैं। चूंकि हमारा ज्यादातर आर्थिक लेन-देन क्रेडिट या डेबिट कार्ड से चलता है इसलिए हमें इससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ा, लेकिन सामान्य तबके का एक बड़ा हिस्सा आज भी कैश में ही लेन-देन करता है और इसीलिए वह तमाम परेशानी से दो-चार है। यह सही है **कि** नोट बंदी की घोषणा के साथ यह स्पष्ट किया गया कि आप अपने किसी वैध पहचान पत्र के साथ बैंक या डाक घर में जाकर कुछ पुराने नोटों के बदले नए नोट प्राप्त कर सकते हैं और कुछ रकम खाते से निकाल भी सकते हैं, **लेकिन** गुरुवार को बैंकों के खुलते ही जिस तरह लंबी कतारें नजर आईं उससे लोगों को हो रही परेशानी को समझा जा सकता है।सरकार ने नोट बंदी का यह कदम काले धन को रोकने के लिए उठाया है। देश में हर साल कितना काला धन पैदा होता है, इसके बारे में कई आकलन हैं। नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पब्लिक फाइनेंस एंड पॉलिसी (एनआइपीएफपी) के एक गोपनीय अध्ययन के मुताबिक 2013 में जीडीपी के 75 फीसदी के बराबर समांतर रूप से ब्लैक इकोनॉमी चल रही थी। एनआइपीएफपी के 1985 में किए गए आधिकारिक अध्ययन में 1984 में कुल जीडीपी के मुकाबले तकरीबन 21 फीसदी काला धन होने का अनुमान था। उस वक्त देश की जीडीपी का आंकड़ा 173,420 करोड़ रुपये था और माना गया था कि 36,418 करोड़ रुपये का काला धन मौजूद है। गौरतलब है कि 125 करोड़ से ज्यादा की आबादी वाले इस देश में महज 3 करोड़ 50 लाख करदाता हैं और इनमें से 89 फीसदी लोग अपनी सालाना आय 5 लाख से कम बताते हैं यानी महज 11 फीसदी करदाता ही 5 लाख से ऊपर वार्षिक आय घोषित करते हैं। यह आंकड़ा हमें तब **हास्यास्पद** लगता है जब हम यह देखते हैं कि पिछले साल (जो हर लिहाज से मंदी का साल था) देश में लोगों द्वारा 22 लाख से ज्यादा नई महंगी **कारें**, एसयूवी आदि खरीदी गईं। साफ है कि कई ऐसे लोग भी कर नहीं चुका रहे **हैं** जिन्हें चुकाना चाहिए। चूंकि संप्रग सरकार ने इस समस्या का निदान नहीं किया इसलिए

लोगों ने उसे सत्ता से खदेड़ दिया। उसकी जगह लोगों ने इस उम्मीद में मोदी सरकार को केंद्र में बैठाया कि वह चीजों को दुरुस्त करेगी, लेकिन उसने तकरीबन 30 महीने तो यूं ही गुजार दिए। जनता की बेचैनी साफ नजर आ रही थी। अर्थव्यवस्था की सुस्ती को तोड़ने हेतु हमारे हुक्मरान को लगा कि एक सर्जिकल स्ट्राइक कर दी जाए। लिहाजा उन्होंने हमें संतुष्ट करने के लिए यह धमाका कर दिया, किंतु क्या यह काफी है? पिछले साल भारत में रह रहे भारतीयों ने अवैध ढंग से 83 अरब डॉलर की रकम बाहर भेजी। इस मामले में हम चीन के बाद दूसरे नंबर पर रहे। यह रकम तो इस विमुद्रीकरण के दायरे से बाहर ही है। पिछले एक दशक के दौरान अनुमानित रूप से 500 अरब डॉलर की रकम अवैध रूप से बाहर भेजी गई है। सरकार ने इसकी वापसी के प्रति भी कोई खास सक्रियता नहीं दिखाई है।यह ध्यान रहे कि ज्यादातर अवैध रकम प्रॉपर्टी, ज्वैलरी समेत अन्य ऐसी संपत्तियों में लगी है जिनका जब चाहे अन्य संपत्तियों से विनिमय किया जा सकता है। इनके मुकाबले नकदी के रूप में रखी गई अवैध रकम तो कम ही होगी। ज्यादातर छोटे-मोटे कारोबारी, व्यापारी, दस्तकार या किसान इत्यादि ही अपने गाढ़े पसीने की कमाई को नकदी के रूप में अपने घर में रखते हैं। बैंकों में नोट बदलने के लिए लगी लंबी-लंबी कतारों में ज्यादातर यही लोग खड़े नजर आ रहे हैं। इस तरह के सीमित प्रहारों से काले धन की समस्या का समूल नाश नहीं हो सकता। इसके लिए हमें व्यवस्था में आमूल सुधार करते हुए वास्तविक और गहन सुधारों को सख्ती से अंजाम देना होगा। दरअसल अब हमें एक नई शुरुआत करनी होगी और अच्छी शुरुआत के लिए जरूरी है कि कर चोरी को ऐसे आपराधिक जुर्म की श्रेणी में रखें जिसके लिए अनिवार्य जेल की सजा का प्रावधान हो। हम ऐसी अदालतें भी तैयार करें जिसमें आर्थिक अपराध के मामलों की जल्द सुनवाई और निपटारा हो।

लेखक मोहन गुरुस्वामी, आर्थिक- राजनीतिक मामलों के विश्लेषक हैं

THE HINDU

Date: 15-11-16

When cash is not king

In one fell swoop, demonetisation has struck a blow to the parallel economy.

In a new tryst with destiny, once again at the stroke of the midnight hour on November 8-9, Narendra Modi effectively demonetised large denomination notes in India. Of the Rs.16 lakh crore-plus in circulation, Rs.500 and Rs.1,000 notes account for about Rs.14 lakh crore and more than 85 per cent by value of all rupee bills in circulation, as per Reserve Bank of India data. With this master stroke, the Prime Minister has walked the talk and shown that when it comes to doing the right thing, and eliminating the wrong, he doesn't spare even the corrupt in his own party. He has effectively dealt a death knell to the private businesses of all politicians, lawyers and bureaucrats.All those craving for big-bang reforms couldn't have asked for more — corruption cannot thrive where money is traceable and Mr. Modi's is a significant step against big-ticket corruption and black money. The secrecy with which it was conceived and executed has left the nation stunned. It is far bigger in scope and

scale than those attempted ever before in independent India, and is the first of many bold steps which perhaps only this Prime Minister could have done for disrupting the business model of Indian politics forever.

Parallel transaction networks

At the heart of it is the simple proposition that large currency notes are used more to conceal than to purchase. Mr. Modi has converted this one sentence into an economic manna in his avowed fight against black money and corruption, which is laudable.Peter Sands of Harvard Kennedy School, one of the proponents of this idea of killing large currency notes, one later supported by former U.S. Treasury Secretary Larry Summers, argues that a million dollars in $20 bills weighs 110 pounds or about four suitcases, whereas in 500-euro notes, less than 4 pounds, making the former very hard to transport. The U.S. stopped issuing $500 notes in 1969, the European Central Bank halted 500-euro notes early this year, and Singapore killed its $10,000 note and Canada its $1,000 note in 2000. India has one of the highest cash to GDP ratios at 12 per cent (excluding the parallel economy) and despite a well-publicised amnesty scheme, the fear of god had not sunk in. Now it will, with Mr. Modi's big-bang step.

Mr. Sands illustrates by arguing that bulk cash transfer plays a role in more complex drug trafficking and money-laundering schemes. Cash couriered from Paris to Belgium was used to buy gold, which in turn was couriered to Dubai, where it was made into jewellery which was sold in India with the profits then wired back to France. This network was estimated to launder 170 million euros per year. And this is an example of one transaction network — imagine how many more are out there in the world! India's black economy is estimated to be $400-500 billion, larger than several economies of the world, and almost $3.5 billion is spent in currency operation costs annually, as per Tufts University's Cost of Cash study. On purchasing power basis, Rs.500 and Rs.1,000 notes are large by Indian standards even though they may not be as per exchange rates.

Short-term pain, long-term benefits

Indeed, there will be some contraction in money supply and thus a slight deflationary impact, which will cause some inconvenience in the very short term to the average citizen, which the Prime Minister has acknowledged repeatedly in his speech, but this will be compensated by significant benefits in the long term for all law-abiding citizens.The deflationary impact could be felt in sectors where cash is the main instrument of transaction and perhaps in some asset prices as well, such as in real estate. In the longer term, it will lead to a greater proportion of the economy shifting from black to white. Those who hold large amounts of cash may, if they deposit it in banks and perhaps pay taxes on it, be forced to join the white economy. It may also raise permanently the cost of holding cash by adding a risk premium. This may encourage people to take the certainty of paying taxes in lieu of the uncertainty of holding black cash.

Real estate firms or jewellers may not accept cash unless it is at a good discount, for they will have to declare it to the banks and pay taxes. So there is no easy option to convert it via real estate or gold. It skews incentives against cash purchases, and gives a fillip to card transactions.The hawala network also won't accept non-legal tender and the ultimate end user anywhere in the world will be stuck with worthless pieces of paper after December 30, 2016. So a person will, at best, exchange it at a discount for the next 50 days.The next big hit should be on purchase of benami property which is a national avocation, for that's perhaps the other big outlet and repository of black money. When the Goods and Services Tax comes into force, the government should do away with stamp duty on land at any stage of the sale; moreover, the tax rates on purchase of property should be dramatically slashed. This apart, election funding reforms and online voting are all big steps in the continuum of reforms, of which this was just the first big step.

The incentives for honesty have been improved, dramatically, with this reform measure, much needed after it was last done in 1978. This will seriously affect the stock of black money but the effect on future flows is unpredictable. However, the flows will perhaps be reduced because of the increased risk perception in cash transactions. Further, the government should take steps to increase mobile penetration, pre-bundled with cash

apps, which will make it easier for those who wish to go digital.Cash is the new trash and the Prime Minister has acted decisively, ending reams of debates, declamations and declarations. Changing human behaviour is the hardest thing to do in the world — Mr. Modi is doing just that in one of the most difficult ecosystems in the world. As a small aside, he has also dealt a body blow to 'terror money', and electoral politics in India will never be the same again.

Srivatsa Krishna is an IAS officer. Views are personal.

Date: 15-11-16

The breakthrough with Japan

Abe, an admirer of India, has been a strong advocate of New Delhi-Tokyo strategic ties

Prime Minister Narendra Modi's recent visit to Japan packed quite a punch: from supporting India's membership in the Nuclear Suppliers Group (NSG) and rationalising the Mumbai-Ahmedabad bullet train timeline to the easing of Indian student visas, training of 30,000 Indians in Japanese-style manufacturing practices, and merging of India's "Act East Policy" with Japan's "Free and Open Indo-Pacific Strategy". Even as Japanese business leaders and investors sought more "free and open" investment climate and relaxation of land acquisition policies, Mr. Modi called for greater participation and engagement of Japanese industries in India, saying it would benefit Japan and India's MSME (micro, small and medium enterprises) sector. In the context of The Hague tribunal's ruling on Chinese activity in the South China Sea, India and Japan also reiterated their commitment to respect freedom of navigation and overflight, and unimpeded lawful commerce, based on the UN Convention on the Law of the Sea.

The nuclear deal

But the signing of the civil nuclear deal was the biggest item on the agenda. With this, Japan is making an exception to its rule of not conducting nuclear commerce with any state that is not a signatory to the Nuclear Non-Proliferation Treaty (NPT). Though this pact has been the subject of intense negotiations between the two countries for the last six years, Mr. Modi and Japanese Prime Minister Shinzo Abe's personal ties managed to give it new momentum. Against the backdrop of China's reluctance to support India's candidacy for the membership of the NSG, the import of Indo-Japanese nuclear cooperation assumes great salience.

This is a remarkable turnaround in many ways. After India tested nuclear weapons in 1998, Japan suspended economic assistance for three years and froze all political exchanges. The former included halting aid for new projects, suspension of yen loans and imposition of strict control over technology transfers. Tokyo called on the G8 countries to condemn the Indian and Pakistani nuclear tests.The U.S.-India civilian nuclear energy cooperation pact ratified during the Bush administration ought to have assuaged many of Japan's concerns. The deal effectively legitimised India's nuclear programme and created formal channels for nuclear technology and materials intended solely for civilian use. Yet although Japan nominally supported the deal, it persisted in predicating any bilateral civilian nuclear cooperation on India signing the NPT and the Comprehensive Test Ban Treaty.

Ending the impasse

The impasse had created a problem for Japanese business and for India. Current Japanese law allows nuclear exports only to states that are either party to the NPT or allow the International Atomic Energy Agency to

safeguard all their nuclear facilities. As a result, Japanese companies with expertise in civilian nuclear technologies are barred from doing business in India, perhaps the reason why Japan's Ministry of Economics, Trade and Industry has long supported the deal. It also deprives Indians of the opportunity to buy high-quality civilian technology.With the nuclear pact, bilateral defence ties will also get a boost with New Delhi's decision to buy 12 US-2i amphibious aircrafts from ShinMaywa Industries in one of Tokyo's first arms deals since Japan's 2014 decision to lift its 50-year ban on arms exports. India had proposed assembling 10 of the planes in India as part of its 'Make in India' initiative and both sides had agreed on transfer of military technology. Tokyo is also stepping up its infrastructure investment in India with the two sides even taking forward potential Japanese investment in India's development of the Chabahar port in Iran.

The relationship between India and Japan is perhaps the best it has ever been, largely because both countries have Prime Ministers who view the region and the world in very similar terms. Abe, a long-standing admirer of India, has been a strong advocate of strategic ties between New Delhi and Tokyo. He was one of the first Asian leaders to envision a "broader Asia", linking the Pacific and Indian Oceans to form the Indo-Pacific. And as he has gone about reconstituting Japan's role as a security provider in the region and beyond, India seems most willing to acknowledge Tokyo's centrality in shaping the evolving security architecture in the Indo-Pacific.The U.S.-India-Japan trilateral engagement is gaining momentum. The three countries held their first trilateral meeting at the foreign ministerial level in September 2015, followed by the six-day Malabar 2015 naval exercise in the Bay of Bengal a month later, which reflected a convergence of India's Act East policy, Japan's growing focus on freedom of navigation in the South China Sea and the Obama administration's "strategic rebalance" towards the Indo-Pacific. Other trilateral configurations are also emerging with Japan, Australia and India interacting at a regional level. There is a growing convergence in the region now that the strategic framework of the Indo-Pacific is seen as the best way forward to manage the rapidly shifting contours of Asia.Though Beijing views the framework with suspicion, many in China acknowledge that the Indo-Pacific has emerged as a critical regional area for India, and that China needs to synchronise its policies across the Indian Ocean region and the Pacific.

Harsh V. Pant is Head of Strategic Studies at Observer Research Foundation, New Delhi, and Professor of International Relations at King's College London.

Date: 15-11-16

The tragedy of the commons

The only way out for public policy for environmental damage is to place strong emphasis on individual and social cost of inaction

Residents in the already polluted Capital experienced something of a turning point on Diwali. The belaboured, particulate-loaded air was further bombed with firecrackers. Some described the scene as a war zone with active shelling. People were angry not only because they could not physically breathe, but also because they felt the assault on their senses was wilful. They were emotionally upset because the reality of the cracker was coming through the free will of fellow citizens. Thousands of calls were made to policemen asking for a stop to firecrackers — many felt that lighting the crackers (irrespective of whether permissible noise limits were breached or not) was a criminal act. The act of burdening common air further was almost like an act of violence.While pollution and other environmental degradation have physical impacts on people, their emotional and psychological costs are often overlooked. In Delhi, for instance, the anxiety of knowing that the air is deadly is adding to the physical challenges of living

there. The time to act on air pollution in Delhi and other Indian cities was yesterday. But the time to consider psychological impacts of environmental degradation surely is now.

Inaction costs us

The environment is our habitat, and we make interventions in it for habitation — air conditioning, heating, sunshades, and now, air purifiers and air pollution masks. Dangers in the environment, such as pollution, are usually looked at as medical cases. Sometimes, compensation is meted out for long-term environmental damage or spills. But the very idea of compensation following damage is transactional — it suggests something broken can be healed. However, in the case of environmental damage the issue is more problematic. It is difficult to compute the extent of environmental damage to both people as well as ecosystems. It has also proved difficult to understand the costs society is likely to have in the future. This has given rise to the idea of Precautionary Principle, which suggests not carrying out an activity that is likely to seriously harm the environment. Moving from a traditional view of paying for environmental damage after it has occurred, new approaches are trying to suggest what scenarios would occur if pollution or damage is caused (before it occurs), and subsequently, understanding the costs of inaction on the environmental front.A 2013 World Bank report said environmental degradation cost India 5.7 per cent of its GDP in 2009. The report concluded that environmental degradation is actively harming the economy. In terms of prevention, it made another equally important observation: after a certain point of environmental degradation, clean-up becomes cripplingly expensive, as we are witnessing in rivers Yamuna and Ganga today.

Collective responsibility

Much of the Swachh Bharat (Clean India) campaign focusses on not just governance and municipal responsibility, but also personal habits. People are extolled not to litter, spit or destroy the environment. To a limited extent, the issue of tackling air pollution is also about individual habits. Getting pollution checks on personal vehicles, not causing garbage fires and not burning firecrackers are some of the most common ways individuals combat air pollution. However, after Diwali, cities like Mumbai, Delhi, Kanpur, Lucknow all recorded poor air quality.While criticism was heaped on people burning crackers, others said people should have the freedom to 'celebrate festivals'; crackers were burst both on Diwali and Chhath puja (by which time air quality had already reached crisis levels). Thus, those who feel anxious, emotionally stressed or angry following the burning of crackers are up against those who feel they are taking part in celebrations which cause happiness. The environment, of course, is agnostic. It does not know the difference between damage caused by religious activities or otherwise.

The only option out for public policy for environmental damage is to place strong emphasis on individual and social cost of inaction. Further, the psychological costs of inaction have to be better explained. This could be through public announcements, popular outreach and education. I can think of three scenarios. A school decides to wage a war against particulate matter, by watering the leaves of a tree, growing indoor plants, or asking parents to get cars checked, creating a chain of behaviour; citizens stop bursting crackers for their own sake as well as that of the greater public good; and the government works out a Payment for Ecosystem Service or incentive scheme that prevents a poor farmer from burning his crops by using resources from another section of society.

In the 1960s, ecologist Garrett Hardin coined the term 'the tragedy of the commons', speaking of how 'commons' such as the sea, meadows, or pieces of land get degraded. This is because no one particular section of society or individual takes responsibility. The issue with environmental degradation is that we have historically felt we can afford to wash our hands of our commons, that is, our environmental issues. We can no longer afford to do so, as the tragedy of the commons — from being one that society experienced in some distant and non-corporeal form — has become toxically pointed towards each of us through the very air we breathe.As we go about the monumental task of cleaning our cities and homes — and bringing better air or water quality — one of the important ways to address this will be through focusing on individual and societal happiness, and the marked lack of well-being through inaction or inertia. This is a reason for governments and

communities to act now. No answers can be immediate, and India's air may well hang heavy for years to come. But ignoring the emotional and psychological costs of environmental damage will be at further collective peril.

Neha Sinha is with Bombay Natural History Society. Views expressed are personal.

राष्ट्रीय सहारा

Date: 15-11-16

बनने ही न दें ब्लैक मनी

काले धन के सृजन को खत्म करने के मद्देनजर चुनाव में भी काले धन के प्रयोग को कठोरतापूर्वक रोकना होगा। यद्यपि पिछले कुछ वर्षो के दौरान चुनाव आयोग ने चुनाव में धन के इस्तेमाल को नियंत्रित करने की कोशिश की है। लेकिन जरूरी है कि उम्मीदवार और राजनीतिक दलों के खर्च पर और अधिक ध्यान दिया जाए

हल ही में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) ने कहा कि भारत में बड़े नोटबंदी के बाद अर्थव्यवस्था की मजबूती के लिए जरूरी है कि सरकार की मुट्ठियों में जो नया धन आया है उसका उत्पादक उपयोग हो और कालेधन के सृजन को खत्म करने की डगर पर आगे बढ़ा जाए। यद्यपि बड़े नोटों को रद्द किए जाने के बाद देश हित में आम नागरिक से लगाकर उद्योग और कारोबार के लोग परेशानियों का धैर्यपूर्वक सामना कर रहे हैं। लेकिन अब देश के करोड़ों लोगों की एक ही आवाज है कि सरकार को यह जो अप्रत्याशित लाभ एकबारगी हुआ है, वह बर्बाद नहीं हो। गौरतलब कि ब्रोकरेज फर्म "एडलवाइस सिक्योरिटीज' के अनुमान के आनुसार सरकार ने हाई-वैल्यू करेंसी के जरिए काले धन पर जो तगड़ी चोट की है, उसके मद्देनजर करीब 3 लाख करोड़ रुपये सरकार के पास आएंगे। ये पैसे टैक्स से बचने के लिए छुपाकर रखे गए थे। इस तरह बाजार में कालेधन के रूप में प्रचलित करीब तीन लाख करोड़ रुपये की जो नकदी खत्म हो जाएगी, वह जीडीपी के 2 फीसद के बराबर है। इससे निवेश बढ़ेगा और अर्थव्यवस्था की आपूत्तर्ि क्षमता बढ़ेगी। साथ ही मुद्रास्फीति की दर घटेगी। निश्चित रूप से बड़े नोटों को निरस्त करने से हुई राजस्व वृद्धि का प्रयोग सुनियोजित रूप से सही दिशा में किया जाना चाहिए। रकम का उपयोग हाईवे बनाने, मनरेगा के आवंटन में वृद्धि, सेना के लिए देश में आधुनिक हथियार निर्माण कार्य, रेलवे फ्रेट कॉरिडोर या एक्सप्रेस-वे जैसी बुनियादी परियोजनाओं में इस रकम का इस्तेमाल विभिन्न आर्थिक सुधारों की फंडिंग में किया जाना चाहिए। इन सबके साथ-साथ सरकार द्वारा इस राशि का एक बड़ा भाग गरीबों की कल्याण योजनाओं पर भी खर्च किया जाना चाहिए। इससे आम आदमी तक यह संदेश भी जाएगा कि अमीरों से अवैध धन लिया गया और वैध धन गरीबों को दे दिया गया। लेकिन बढ़े हुए राजस्व का उपयोग सरकारी खर्चो को पोषित करने में नहीं होना चाहिए। अब सरकार की कोशिश होनी चाहिए कि काले धन के सृजन को भीखत्म किया जाए। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ फाइनेंशियल मैनेजमेंट का कहना है कि भारत में करीब 30 लाख करोड़ रुपये का काला धन है। ऐसे में उन तमाम रास्तों को बंद करने की रणनीति बनाई जाए, जिससे ब्लैक मनी को सफेद बनाना आसान हो जाता है। अब सरकार का अगला कदम कैश लेन-देन पर अंकुश लगाना होना चाहिए। काले धन की जांच से जुड़ी समिति के अध्यक्ष जस्टिस एम.बी. शाह के सुझावों के मद्देनजर अब इस दिशा में अगला कदम 5 लाख से ज्यादा के कैश के लेन-देन पर रोक लगाने का

होना चाहिए। यानी कोई भी व्यक्ति नकद से 5 लाख रुपये तक का ही लेन-देन कर सके। इसके ज्यादा का लेन-देन वह नकद से नहीं कर पाए। इसके बाद ज्यादा का लेन-देन, बैंक चेक, ट्रैवल्स चेक, डिमांड ड्राफ्ट या अन्य तरीकों से किया जाए। यह बात ध्यान में रखी जानी होगी कि जो लोग अच्छी आय कमाने के बाद भी आयकर नहीं दे रहे हैं, वे आयकर के दायरे में लाए जाएं। देश में अभी कोई पांच करोड़ लोग आयकर अदा करते हैं। बड़े नोटों की बंदी के बाद पचास लाख से एक करोड़ नये आयकरदाता बढ़ाए जा सकते हैं। ज्यादा लोगों को आयकर दायरे में लाने और ई-भुगतान को बढ़ावा देने के लिए वर्ष 2017-18 के नए बजट में टैक्स छूट 2.50 लाख से बढ़ाकर तीन लाख की जानी चाहिए। सरकार द्वारा आयकर की चोरी करने वाले संभावित लोगों और सेक्टर की लिस्ट को भी अंतिम रूप दिया जाना चाहिए। सरकार ने एनएमएस यानी नॉन फाइलर्स मॉनिटरिंग सिस्टम के जरिए जिन 1.36 करोड़ लोगों की पहचान की है, उस सूची को भी अंतिम रूप दिया जाना चाहिए। इसके साथ ही एनुअल इंफॉर्मेशन रिटर्न के आधार पर बड़े पैमाने पर छापेमारी की तैयारी भी की जानी चाहिए। काले धन की समस्या के समाधान के लिए टैक्स दरों में कटौती और सरकारी कर्मचारियों और नेताओं के भ्रष्टाचार पर नकेल कसना भी जरूरी है। अब देश में वित्तीय बचतों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। चूंकि काले धन में कमी आने से सोना और अचल संपत्ति में निवेश कम होगा, अतएव वित्तीय बचतों की संभावना बढ़ेगी। धन के प्रवाह की पुष्टि से भारत में वित्तीय बचत का आकार बहुत कम है। यह प्रयास करना होगा कि बैंकिंग पण्राली के जरिये लेन-देन साफ-सुथरी अर्थव्यवस्था की ओर बढ़े। केंद्र सरकार द्वारा वित्तीय ई-ट्रांजेक्शन को बढ़ावा देने के लिए प्रयास करना होंगे। इस समय सरकारी महकमों में ई-ट्रांजेक्शन पर जो शुल्क लगाया जा रहा है वह ग्राहकों से नहीं वसूला जाना चाहिए। डेबिट-क्रेडिट कार्ड यानी प्लास्टिक मनी को तेजी से प्रोत्साहित करने की रणनीति बनाई जानी चाहिए। चूंकि बाजार में करीब 87 फीसद लेन-देन नकद में होता है और मात्र 13 फीसद डिजिटल भुगतान का हिस्सा है, ऐसे में डिजिटल भुगतान संबंधी कमियों को पूरा करना होगा। देश में अभी 13 लाख प्वाइंट ऑफ सेल (पीओएस) टर्मिनल हैं। इस बुनियादी ढांचे को कई गुना बढ़ाया जाना होगा। मार्च 2016 तक भारत में करीब 66 करोड़ डेबिट कार्ड चलन में हैं, इनमें से 87 फीसद डेबिट काडरे का इस्तेमाल एटीएम से केवल नकद निकासी के लिए ही हो रहा है। देश में क्रेडिट कार्ड केवल 2.3 करोड़ ही हैं। ऐसे में डेबिट और क्रेडिट कार्ड के बारे में जागरूकता अभियान चलाकर इन्हें लोकप्रिय बनाया जाना जरूरी होगा। काले धन के सृजन को खत्म करने के मद्देनजर चुनाव में भी काले धन के प्रयोग को कठोरतापूर्वक रोकना होगा। यद्यपि पिछले कुछ वर्षो के दौरान चुनाव आयोग ने चुनाव में धन के इस्तेमाल को नियंत्रित करने की कोशिश की है। लेकिन जरूरी है कि उम्मीदवार और राजनीतिक दलों के खर्च पर और अधिक ध्यान दिया जाए। ऐसा होने पर ही जहां काले धन पर नियंतण्रहो सकेगा, वहीं काले धन के सृजन को खत्म करने पर भी तेजी से कदम बढ़ेंगे।

जयंतीलाल भंडारी